IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी अस्तित्व व अस्मिता के सवाल : झारखण्ड राज्य के विशेष संदर्भ में

डॉ0 सुबोध प्रसाद रजक
पीएच.डी. (बी.एच.यू., वाराणसी)
सहायक प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग,
गोड्डा कॉलेज, गोड्डा
झारखण्ड–814133

ABSTRACT

विद्वानों के बौद्धिक विमर्श में वैश्वीकरण आज भी एक विवादित विषय है। जहाँ एक ओर उदारवादी चिंतकों ने वैश्वीकरण को विकास का अनिवार्य शर्त्त माना है, तो दूसरी और साम्यवादी चिंतकों ने इसे नव–साम्राज्यवाद या फिर आर्थिक उपनिवेशवाद का साधन कहा; तो कुछ विद्वानों ने वैश्वीकरण को पश्चिमीकरण या अमेरिकीकरण की नियोजित योजना कहा है। वैश्वीकरण ने आदिवासी आर्थिकी, मूल्य परंपरा, संस्कृति एवं विश्वासों को बहुत गहरे रूप में प्रभावित किया है।

वैश्वीकरण ने विकास के जिस प्रतिमान एवं आधुनिकता के मॉडल को प्रचारित व प्रसारित किया है, उसने झारखण्ड के आदिवासियों के पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था व मूल्य प्रणाली को कुछ नकारात्मक तो कुछ सकारात्मक अर्थों में एक नई दिशा दी है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं गंभीर एवं एक–दूसरे से गुँथे हुए विषयों पर एक बौद्धिक परिचर्चा स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द :– वैश्वीकरण, विकास, आदिवासी अस्मिता, आदिवासी आर्थिकी।

"Globalisation is a double-edged sword. It's a controversial process that assaults national sovereignty erodes local culture and tradition and threatens economic and social stability." - *Robert J. Samuelson*

भूमिका :–

वैश्वीकरण की वैचारिकी की शुरूआत हम 1960 में लिखी डेनियल बेल की प्रसिद्ध पुस्तक "The End of Ideology" से मान सकते हैं, जब साम्यवाद के ऊपर पूँजीवाद को बढ़त हासिल होने लगी थी। 1985 में मिखाईल गोर्वाच्योब के राजनीतिक पुनर्निर्माण एवं आर्थिक खुलेपन की नीतियों ने साम्यवाद की दीवारों को कमजोर एवं पूँजीवाद के खंभों के मजबूत करने का काम किया। 1991 में सोवियत संघ के विघटन ने एक आर्थिक व राजनीतिक प्रणाली के रूप में साम्यवाद की विफलता पर मुहर लगा दी और उदारवादी पूँजीवाद की सफलता को निर्विवादित बना दिया और इस तथ्य की सैद्धांतिक समर्थन 1992 में प्रकशित पुस्तक 'The End of History and the Last Man" ने किया; जिसके रचनाकार अमेरिकी राजनीतिशास्त्री फ्रांसिस फुकुयामा हैं। भारत में 1991 के काल में देश की आर्थिक बदहाली की परिस्थितियों ने विश्व बैंक द्वारा कर्ज दिए जाने के लिए देश की अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक समायोजन की शर्तों ने नई आर्थिक नीति अर्थात् वित्त मंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में आर्थिक सुधार का रास्ता तैयार किया, जिसमें उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, विदेशी पूँजी निवेश, विकास का पूँजीवादी प्रतिमान, खुली अर्थव्यवस्था, बाजार केन्द्रित अर्थव्यवस्था आदि का मार्ग प्रशस्त किया। नई आर्थिक नीति को जमीनी स्तर पर उतारने के क्रम में तथाकथित विकास की मुख्यधारा के नाम पर आदिवासी विकास के मानकों को, मूल्यों को, वन आर्थिकी को तिलांजलि देते हुए पलायन, विस्थापन जैसे विषय आदिवासी बौद्धिक विमर्श के केन्द्र में आने लगीं। देश का सबसे खनिज संपदा संपन्न राज्य के आदिवासी विस्थापन, पलायन का शिकार होने लगे। वृहत् भारत का आदिवासी समुदाय आंतरिक उपनिवेशवाद का शिकार होने लगा। नवीन वैश्विक आर्थिक संधियों ने आदिवासियों की संवैधानिक सुरक्षा कवचों 'अनुसूची–5 एवं 6' को नजरअंदाज करना आरंभ कर दिया। आदिवासियों के परंपरागत सामाजिक व सांस्कृतिक सम्प्रभुता को कमजोर कर दिया। कौशल ज्ञान पर आधारित रोजगार व्यवस्था ने आदिवासियों को बेरोजगार करने का कार्य किया। राज्य के कल्याणकारी कार्यों के सीमांकन ने, बाजार व्यवस्था पर आधारित निजीकरण की प्रवृत्ति ने लोकतांत्रिक राज्य के मानकों, सामाजिक आर्थिक सुरक्षा, शिक्षा व स्वास्थ्य सुरक्षा के मूल्यों को कमजोर किया है।

वैश्वीकरण, विकास और आर्थिक वृद्धि :–

वैश्वीकरण, विश्व नागरिकता, विश्व बंधुत्व, वैश्विक ग्राम, विश्व मानवतावाद, वैश्विक राजनितिक आर्थिक व सांस्कृतिक अंतर्क्रिया व अन्तर्निर्भरशीलता का सैद्धांतिक व दार्शनिक नारों से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है इसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व पर्यावरणीय आयाम। इसका एक चिंतन के रूप में वैश्वीकरण, वैश्विक मानवीय मूल्यों का एकाकार होना एवं उनके प्रति साझी समझ विकसित करना है, जिसे हम मानव गरिमा के संदर्भ में 10 दिसम्बर, 1948 को सार्वजनीन मानवाधिकार की घोषणा के रूप में समझ सकते हैं। लेकिन वैश्वीकरण की अर्थिक परिणति उदारीकरण, निजीकरण, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, बंधनहीन व मुक्त व्यापार, खुली अर्थव्यवस्था, बाजार अर्थव्यवस्था, अहस्तक्षेप का सिद्धांत एवं राज्य के कार्यक्षेत्रों का सिमटना, स्वतंत्र सूचनातंत्र का प्रवाह, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ स्वतंत्र अन्तर्क्रिया एवं अन्तर्निर्भरशीलता आदि संदर्भों में ही बारिकी से समझ सकते हैं। वैश्वीकरण के इस प्रारूप ने उदारवादी पूँजीवाद को बढ़ावा देते हुए राज्य प्रशासन को कल्याण केन्द्रित भूमिका से हटाकर लाभ केन्द्रित भूमिका में ला दिया है। बाजार व्यवस्था ने मानव तक को भी बाजार का एक उत्पाद के रूप में परिवर्तित कर दिया है।

वैश्वीकरण ने वैश्विक स्तर पर पश्चिमी विकसित देशों को ज्यादा लाभ पहुँचाया है और वहीं राष्ट्रीय स्तर पर पूँजीपतियों को ज्यादा लाभ पहुँचाकर अमीर–गरीब के बीच की खाई को और ज्यादा गहरी व चौड़ी करने का काम किया है। राजनीतिक तंत्र पर पूँजीवादी अर्थतंत्र का ज्यादा नियंत्रण हो गया है। देश में राजनीतिक स्तर पर लोकतंत्र होते हुए भी अर्थव्यवस्था पर अभिजात तंत्र (पूँजीपतियों) का नियंत्रण है। इसी तथ्य को अमेरिकी विद्वान मार्क ट्वेन ने रेखांकित करते हुए कहा है कि ''राजनीति ऐसी विनम्र कला है, जिससे गरीबों से वोट और अमीरों से चंदा, दोनों को ही एक दूसरे से रक्षा करने के वादों पर लिया जाता है।''

वैश्वीकरण का ज्यादा लाभ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित देशों और राष्ट्रीय स्तर पर अमीर लोगों को ज्यादा हुआ है; जबकि वैश्वीकरण का नकारात्मक प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकासील देशों एवं राष्ट्रीय स्तर पर गरीब लोगों, जिनमें बहुसंख्यक आबादी आदिवासियों, दलितों की है, पर पड़ा है।

विकास और आर्थिक वृद्धि :–

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, मनरेगा के सिद्धांतकार ज्याँ द्रेज ने अपनी पुस्तक ''भारत और उसके विरोधाभास'' में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया है कि आर्थिक वृद्धि और विकास में बहुत फर्क है। विकास एक उद्देश्य है, जबकि आर्थिक वृद्धि एक माध्यम है। विकास का अर्थ जीवन की गुणवत्ता बढ़ने और आम आदमी के जीवन स्तर में सुधार से है।

विकास का एक आयाम आजादी है (Development as Freedom)

भूख से आजादी, गरीबी से आजादी, शोषण से आजादी, असमानता से आजादी, अंधविश्वास से आजादी और हिंसा से भी आजादी। किसी भी शब्द के विकास को मापने के लिए GDP के साथ–साथ हमें सामाजिक सूचकांक को भी देखना होगा। विकास की समग्र एवं अर्थपूर्ण परिभाषा आर्थिक वृद्धि के साथ–साथ सार्वजनिक कार्य के मात्रात्मक एवं गुणात्मक स्वरूप से भी तय की जानी चाहिए, जिसमें सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक शिक्षा, सार्वजनिक पोषण, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा, सांस्कृतिक सहिष्णुता आदि हैं।

विकास के अर्थशास्त्र से एक महत्त्वपूर्ण बात समझी जा सकती है कि विकास के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है; विशेषकर प्रारंभिक शिक्षा। शिक्षा रोजगार के लिए, स्वास्थ्य के लिए, जनसांख्यकीय बदलाव के लिए, शोषण से बचने के लिए, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीति एवं अपने को अद्यतन करने के लिए बेहद जरूरी है। शिक्षा स्वयं मे ही जीवन की गुणवत्ता का एक हिस्सा है।

अमर्त्य सेन ने अपनी किताब "The Idea of Jutice" में विकास के लिए व्यक्ति के क्षमता निर्माण की बात कही है। इस क्षमता निर्माण में कौशल शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। संविधान शिल्पी डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने विकास के लिए महिलाओं के विकास के स्तर को मुख्य मानक बताया है। केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने अपने एक भाषण में एक पंक्ति कहा था– ''अमीर देश के गरीब लोगों का भारत।'' उनकी यह पंक्ति विकास और आर्थिक वृद्धि के विरोधाभासों को इंगित करता है। विकास के लिए आर्थिक वृद्धि एक आयाम मात्र है न कि एकमात्र आयाम है।

आदिवासी अस्तित्व व अस्मिता के सवाल :–

आदिवासी समुदाय एक विशिष्ट संस्कृति, परंपरा, जीवन प्रणाली व मूल्य प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है, जो इसे किसी दूसरे समुदाय से विशिष्ट बनाती है। आदिवासी संस्कृति और प्रकृति में पारस्परिक संतुलन की परिपाटी निहित होती है आम सहमति पर आधारित लोकतांत्रिक प्रकृतिवादी धर्म–दर्शन की परंपरा एवं निरंतरता। आदिवासी लोगों का पारंपरिक ज्ञान औषधिशास्त्र के विकास एवं प्राकृतिक विविधता के संरक्षण व विस्तार के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रकृति के साथ उनका आध्यात्मिक जुड़ाव, प्रकृतिपूजक कला एवं साहित्य आदिवासी समाज के इन्हीं मौलिक विशेषताओं को संविधान सभा में पृथक झारखण्ड राज्य संकल्पना के सिद्धांतकार जयपाल सिंह मुण्डा ने पुरजोर तरीके से रखते हुए कहा था कि ''हमें तो वास्तविक लोकतांत्रिक मूल्य आदिवासी समाज से सीखने चाहिए।''

वैश्वीकरण के प्रतिकूल प्रभाव के रूप में पूँजीवाद का पागलपन और अर्थ की अंधी दौड़ ने आदिवासी समुदाय को अपनी जन्मभूमि से विस्थापन व पलायन के रूप में चोट पहुँचाई है। किसी वर्ग का विकास किसी दूसरे वर्ग के लिए विनाश बन जाता है। तथाकथित राष्ट्रहित के नाम पर आदिवासी समुदाय को उसके तात्कालिक व दीर्घकालिक अहित की तरफ ढकेल दिया जाता है। हमारी उलझन यह सोचकर और भी उलझ जाती है, जब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगती है। जब तथाकथित विकास की बलिवेदी पर किसी वर्ग विशेष की न्यूनतम जीवन जीने की दशाओं की कुर्बानी दी जाने लगती है; उन्हें जीवन जीने के आवश्यक शर्तों के साथ समझौता करने के लिए मजबूर किया जाता है। प्रो0 रामदयाल मुण्डा ने अपनी पुस्तक ''आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी आस्मिता के सवाल'' में उद्धृत किया है कि ''आयुर्वेद के जनक धन्वंतरि ने एक बार अपने शिष्यों से कहा था कि मेरे पास जितना ज्ञान था वह सब मैंने आपलोगों को दे दिया है। और यदि आप इससे ज्यादा ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो आपलोगों को आदिवासियों के पास जाना होगा।''

प्रो0 रामदयाल मुण्डा ने एकबार अफसोस व्यक्त करते हुए कहा था कि ''मुझे दुःख होता है जब मैं सुनता हूँ कि झारखण्ड को जापान बनाया जायेगा, झारखण्ड को अमेरिका बनाया जायेगा; लेकिन लोग यह भूल जाते हैं कि झारखण्ड की सम्पन्नता झारखण्ड को झारखण्ड बनाने में हैं।''

आजादी के बाद से आरंभ हुए औद्योगीकरण ने आदिवासी समाज का भौगोलिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विस्थापन किया है और पुनर्वास की बातें महज कागजी आंकड़े बनकर रह गए हैं।

90 के दशक से भारत में आरंभ हुए वैश्वीकरण ने झारखण्ड में खनन उद्योग को बढ़ावा दिया। अन्तर्राष्ट्रीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों का इस क्षेत्र में प्रभाव बढ़ा। राजनीतिक गलियारों में पूँजीपतियों की आवाज बुलंद होने लगी। इन बातों ने आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व पर संकट खड़ा कर दिया है। बड़ी अजीब सी बात है जिस जल–जंगल व जमीन की खातिर, आदिवासी अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा व संवर्द्धन की खातिर पृथक झारखण्ड राज्य का निर्माण किया गया उसी झारखण्ड में आज आदिवासियों की पारम्परिक पहचान, सांस्कृतिक मूल्य खतरे में है।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय निवेश एवं नए–नए उद्योग स्थापित करने की नवीन प्रवृत्तियों ने खनिज संसाधन बहुल क्षेत्रों में अपनी गिद्ध–दृष्टि डाली और दुर्भाग्य से यह खनिज संसाधन गरीब, अपनी दुनिया में जीने वाले प्रकृति प्रेमी, मानवीय मूल्यों से अलंकृत आदिवासी बहुल क्षेत्रों में विपुल मात्रा में उपलब्ध है। खनिज संसाधनों के उत्खनन एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों को स्थापित करने के सिलसिले में आदिवासियों को बहला–फुसलाकर कई तरह के आर्थिक प्रलोभन देकर उनकी जमीन पर कब्जा कर लिया जाता है और फिर शुरू होता है उनका उनके ही क्षेत्रों से विस्थापन; विकास की स्थापना में विस्थापन की प्रक्रिया।

समस्या का समाधान :–

किसी भी समाज में उत्पन्न कतिपय समस्याओं का समाधान समय के साथ–साथ चलने तथा बदलती परिस्थितियों में अपने को ढालने में निहित है। किसी समाज विशेष का समाज की मुख्यधारा से पीछे छूटना वैश्वीकरण के सकारात्मक परिणामों से सामंजस्य न कर पाना, एक समस्या का कारण बन सकता है। अतः समाज का हरेक वर्ग, विशेषकर आदिवासी समुदाय समय के साथ–साथ चलने लगे एवं बदलती परिस्थितियों में वैश्वीकरण की मांग के अनुसार अपने को अनुकूलित करने लगे तो वह समाज भी बिना किसी अवरोध के स्वाभाविक तरीके से विकास के पथ पर आगे बढ़ता चला जाएगा। वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के सवालों का समुचित समाधान करने हेतु हमें वास्तविक धरातल पर बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा को अमल में लाना होगा; क्योंकि इसमें कोई दो राय नहीं है कि आदिवासी झारखण्ड के मूलवासी

एवं नृजातीय समूह की श्रेणी में आते हैं। इसलिए जरूरी है कि इनके पारंपरिक पहचानों का सम्मान एवं स्वीकार करते हुए इन्हें समाज की मुख्यधारा में जोड़ने का प्रयास किया जाए। लोकतांत्रिक सरकार को समाज के मुख्यधारा के नागरिकों की भांति आदिवासी क्षेत्रों में अपने एजेंसियों एवं वन प्रशासन को काम कराने से पहले इन क्षेत्रों में औपचारिक–अनौपचारिक साधन से विश्वास बहाली का कार्य करना चाहिए एवं आदिवासी लोगों के बीच विश्वासपूर्ण संबंध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। लोकतांत्रिक सरकार के प्रति विश्वास बहाली का एक साधन आदिवासी लोगों के पारंपरिक अधिकारों एवं संवैधानिक प्रावधानों का सम्मान करना हो सकता है, लेकिन इस विश्वास बहाली की प्रक्रिया भी लोकतांत्रिक होनी चाहिए। जैसा कि कनाडाई विद्वान बहुसंस्कृतिवाद के सिद्धांतकार विल किमलिका ने बहुसंस्कृतिवाद के सैद्धांतिकरण में यह रेखांकित किया है कि मूलवासियों को स्वशासन और जमीन का हक है। यदि इन समूहों को यह अधिकार नहीं दिए जाते हैं तो वे अपनी सामाजिक संस्कृति खो देंगे और उन्हें वह संदर्भ नहीं मिलेगा, जिससे वे अपनी व्यक्तिगत आजादी को सही तरीके से उपयोग कर सकते हैं।

जेम्स स्टेलर इससे आगे बढ़ते हुए इस बात पर जोर देते हैं कि मूल निवासियों और गैर मूल निवासियों के बीच संबंध तीन तरह के समझौतों पर आधारित होने चाहिए – मान्यता, निरंतरता और सहमति। गैर मूल निवासी राष्ट्रों के साथ मूल निवासी राष्ट्रों को भी मान्यता दी जानी चाहिए अर्थात् मूल निवासी के राष्ट्रों को संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। मूल निवासियों के कानूनों एवं परम्पराओं की निरंतरता को स्वीकार किया जाना चाहिए। गैर मूल निवासियों एवं मूल निवासियों के बीच के संबंधों में लोकतांत्रिक मानकों को स्वीकार किया जाना चाहिए।

आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के संकटों का समाधान हेतु ओरेवेलियन की पुस्तक “The Philosophy of NEFA”, जिसे आदिवासियों का धर्मगंथ कहा जाता है; जिस पुस्तक की भूमिका तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने स्वयं लिखी थी; इसी पुस्तक के आधार पर जवाहरलाल नेहरू ने आदिवासी की परंपराओं का सम्मान करते हुए उनके विकास हेतु एवं उन्हें शनैः–शनैः समाज की मुख्यधारा में जोड़ने हेतु आदिवासी पंचशील का सिद्धांत दिया था जिसमें मुख्य पाँच सिद्धांत निम्न प्रकार हैं :–

1. आदिवासी लोगों को अपनी प्रतिभा स्वयं विकसित करनी चाहिए और हमें उन पर कुछ भी लागू नहीं करना चाहिए। हमें हर तरह से उनकी पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा देने की कोशिश करनी चाहिए।
2. भूमि और जंगल के जनजातीय अधिकार का सम्मान किया जाना चाहिए।
3. हमें प्रशासन और विकास के काम करने के लिए स्वयं आदिवासी लोगों को प्रशिक्षित करने और टीम बनाने की कोशिश करनी चाहिए। आदिवासी क्षेत्र में बहुत से बाहरी लोगों को प्रवेश करने से बचना चाहिए।
4. हमें आदिवासी क्षेत्र में प्रशासन का कार्य आदिवासी समाजिक और सांस्कृतिक संस्थानों के माध्यम से करना चाहिए।
5. हमें आँकड़ों के आधार पर या इस क्षेत्र में खर्च किए गए पैसे के आधार पर योजनाओं का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए, बल्कि मानवीय दशा की गुणवत्ता में सुधार के आधार पर मूल्यांकन करना चाहिए।

आदिवासी अस्तित्व व अस्मिता की समस्याओं के समाधान एवं विकास के लिए संविधान सभा में आदिवासी हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले जयपाल सिंह मुण्डा के विचार भी इस दिशा में अति महत्त्वपूर्ण है। जयपाल सिंह मुण्डा का स्पष्ट मानना था कि आदिवासी की पहचान उनके सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर होती है।

जयपाल सिंह मुण्डा का आदिवासी विकास का मॉडल आधुनिकीकरण या फिर शहरीकरण से दूर जाने की बात नहीं करता है। उनका मानना था कि आदिवासियों को अपने ऐतिहासिक परंपराओं से आधुनिकता की ओर बढ़ना चाहिए। आदिवासियों की परंपराओं में कुछ अच्छी अनुकरणीय बातें हैं, लेकिन समय के साथ उनमें संशोधन भी किया जाना चाहिए, किन्तु इस बात का निर्णय लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप आदिवासी प्रतिनिधियों द्वारा ही किया जाना चाहिए कि उन्हें क्या रखना है और क्या नहीं एवं कहाँ किस भाग में कितना संशोधन करना है। जयपाल सिंह मुण्डा आदिवासियों के विकास के लिए उनकी पारंपरिक कृषि प्रणाली में सुधार, शिक्षा में सुधार, स्वास्थ्य में सुधार, उनकी आर्थिकी में सुधार चाहते थे। विकास करना हर कोई चाहता है

लेकिन यह आवश्यक है कि विकास की परिभाषा तय करने में सम्बद्ध व प्रभावित समाज की सक्रिय व प्रभावी भूमिका होनी चाहिए।

निष्कर्ष :–

वैश्वीकरण के सकारात्मक परिणामों ने जिस प्रकार आदिवासी समुदाय के लिए विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार व आधुनिकता का द्वार खोला है, उस द्वार के माध्यम से आदिवासी समुदाय बंधनहीन वैश्विक दुनिया में प्रवेश करना चाहता है। आदिवासी समुदाय भी अपने को विकास से जोड़ना चाहता है। रोजगार पाकर एक सुविधापूर्ण, सुविधाभोगी आधुनिक व वैज्ञानिक जीवन को जीना चाहता है। अपने को संसाधन में तब्दील कर देश की विकास प्रक्रिया में योगदान करना चाहता है। समाज की मुख्यधारा में शामिल होकर अपने को अद्यतन करना चाहता है। आधुनिकता की तमाम शर्तों को स्वीकार कर अपने को आधुनिक कहकर गर्व व सम्मान की अनुभूति करना चाहता है। इन तमाम तथ्यों का स्पष्ट प्रमाण हमें उन परिवारों की जीवनशैली, सोचने के तरीके, बोलने के तरीके वे कार्य संस्कृति से पता चलता है, जो कभी वंचित, शोषित व दमित थे, लेकिन अब शिक्षा व रोजगार पाकर आधुनिकता व विकास प्रक्रिया के साथ–साथ चल रहे हैं; समाज की मुख्यधारा के साथ अपना स्वर मिला रहे हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमें वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को कमतर करते हुए इसके सकारात्मक प्रभावों को ज्यादा प्रभावशाली एवं विकसित करते हुए वैश्वीकरण को आदिवासी अस्तित्व व अस्मिता के संकट के स्थान पर एक अवसर एवं संभावना में तब्दील करने की दिशा में सोचना होगा; क्योंकि वैश्वीकरण वर्तमान समय का सच है और भविष्य की संभावना और इस सच से हम इनकार नहीं कर सकते हैं। अतः जरूरत इस बात की है कि जितनी जल्दी हो सके हमें इसे स्वीकार करते हुए सकारात्मक दिशा में कदम बढ़ाने होंगे। वर्तमान समय का सच यही है कि वैश्वीकरण विकास का साधन बन गया है। इसलिए वैश्वीकरण का विरोध करने के बजाय हमें इसके सकारात्मक पक्षों को विस्तार एवं नकारात्मक पक्षों को कमतर करने के बारे में सोचना चाहिए। अपने दृष्टिकोण को सकारात्मक दिशा में परिवर्तित करना चाहिए, क्योंकि परिवर्तन भी विकास की एक अनिवार्य शर्त्त है।

"Progress is impossible without change and those who cannot change their minds cannot change anything."

- George Bernard Shaw

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. तिर्की, प्रभाकर, ''झारखण्ड : आदिवासी विकास का सच'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, 2015.
2. चलम, के.एस., ''आर्थिक सुधार और सामाजिक अपवर्जन : भारत में उपेक्षित समूहों पर उदारीकरण का प्रभाव'', SAGF Publications Pvt. Ltd., New Delhi-110002, 2008.
3. हेमंत, झारखण्ड, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली–110002, 2008.
4. सिन्हा, अनुज कुमार, ''झारखण्ड आंदोलन का दस्तावेज, शोषण, संघर्ष और शहादत'', प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली–110002, 2013.
5. रघुवंशी, कमलेश, ''दैनिक जागरण और कितना वक्त चाहिए झारखण्ड को?'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, 2013.
6. तलवार, वीर भगत, ''झारखण्ड के आदिवासियों के बीच'', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–110003, 2012.
7. दूबे, श्यामाचरण, ''विकास का समाजशास्त्र'', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010.
8. दूबे, श्यामाचरण, ''परम्परा और परिवर्तन'', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008.
9. सिंह, शिवबहाल, ''विकास का समाजशास्त्र'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010.
10. https://www.greenbiz.com/article/tribalism-vs-globalism
11. https://tribune.com.pk/story/2034619/caught.globalism-tribalism?amp=1
12. "Education for sustainable Development", UNESCO, 10 May, 2013, Retrieved 17 October, 2017.
13. Machingura, fortunate (27 February, 2017), "The Sustainable Development Goals and their Tradeoffs".

14. IMF and the Sustainable Development Goals", IMF, Retrieved 29 April, 2023.

15. United Nations (2015), Resolusion adopted by the General Assembly on 25 September, 2015, Transforming our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development.

16. Dasgupta, P. (2007), "The Idea of Sustainable Development".

17. Endress, L.; Roumasset, J.; Zhou, T. (2005). "Sustainable Growth with Environmental Spillovers", Journal of Economic Behaviour and Organization.

18. Sengupta, N. (1980). "Class and Tribe in Jharkhand", Economic and Political Weekly.

19. Weiner, Myren (1978). Sons of The Soil: Migration and Ethnic Conflict in India, Princeton, Princeton University Press.

20. Minz, N. (1968). A Memorandum on the Adivasi Problems in the Central Tribal Belt of India and their Permanent Solutions, Ranchi, Mimeo.

21. Munda. Ram Dayal and Mullick, S. Basu (2003). The Jharkhand Movement: Indigeneous People's Struggle for Automomy in India, New Delhi, IWGIA.